सिनेमा में प्रेम में पगी स्त्रियाँ

सुधा उपाध्याय
हिन्दी विभाग

हम ने देखी है इन आँखों की महकती खुशबू
हाथ से छूके इसे रिश्तों का इल्ज़ाम न दो
सिर्फ़ एहसास है ये रूह से महसूस करो
प्यार को प्यार ही रहने दो कोई नाम न दो
(गीतकार-गुलज़ार, फिल्म खामोशी-1969)1

प्यार ऐसा ही है। एक अनबूझी पहेली, जिसके अहसास को महसूस करो। जितना महसूस किया, प्रेम में उतने ही पगते चले गए। जितना कम आत्मसात किया, उतने ही कच्चे होते गए। यह सच है प्रेम में पगना एक तपस्या है, साधना है, उम्मीद की पराकाष्ठा है और जब महसूसने लगे तो समझो, आकाश हो गए। पग गए। प्रेम रुपहले पर्दे पर हो या छोटे पर्दे या इन पर्दों से इतर, आम ज़िंदगी में, उसकी तपिश निरंतर बढ़ती ही जाती है।

“History and legend link the story of our past. when both are fused in the crucible art & imagination, the spirit of this great land is revealed in all its splendour and beauty.”2

फिल्मकार के आसिफ़ ने फिल्म मुग़ल ए आज़म के डिस्क्लेमर की जगह यह कैप्शन देकर सिनेमा के यथार्थ जादुई संसार को स्वप्न के साकार स्वरूप को बड़े कैनवास पर उतार दिया। देखा जाय तो हिंदी सिनेमा अपनी आत्मा में महाकाव्यात्मक है। हज़ार मॉर्डन प्रवेशों के बावजूद, इसकी गहरी संगति प्रेम प्रस्तावों प्रेम गीत-संगीत से सराबोर है। सिनेमा शुद्ध रूप से व्यवसाय है और बाज़ार की बढ़ती साख और बाज़ार से उसके बढ़ते संदेश ने पूँजी, जो उसकी व्यावसायिक बुनियादी शर्त है, उसने ओ टी टी प्लेटफ़ॉर्म के आ जाने से लोकप्रियता

और साख को बढ़ाया ही है। और प्रेम की पगी स्त्रियों की कहानी निरंतर अपने निर्मल भाव से आगे बढ़ रही है।

जैसा मैंने ऊपर कहा, सिनेमा में प्रेम में पगी स्त्रियों का स्वरूप ओटीटी प्लेटफार्म यानी ओवर द टॉप मीडिया सेवा की वजह से और विस्तार पाने में सक्षम रहा है। अब हर घर में सीधे इंटरनेट के मकड़जाल में फंसकर तपते प्यार और उसकी चाहत का अहसास कर सकते हैं।

साहित्य व समाज में भी बहुत कुछ सिनेमा सा ही घट रहा होता है लगातार। कुछ चीज़े इतनी आसानी से नही बदलतीं, जैसे हमारे जज्बात, पसंद और नापसंद, हमारी बरसों पुरानी आदतें और वो दौर जहाँ हमने जीवन के हसीं पल या कुछ इमोशनल पल बिताये हैं हम जिस समय में होते हैं उस समय की तकनीकी के हम आदी होते हैं और एक समय के बाद जब हम उम्र के उस पड़ाव पर होते हैं जहाँ हम अपनी पिछली जिंदगी की भाग दौड़, जद्द्दोजहद को भूल कर बस कुछ पल अपनी आराम कुर्सी पर बैठ कर, चाय की चुस्कियों के साथ आखें बंद कर "फिर वही शाम वही ग़म वही तन्हाई है" या "कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन" सुनना चाहते है। हिंदी सिनेमा अपनी आत्मा में महाकाव्यात्मक है। हज़ार मॉर्डन प्रवेशों के बावजूद इसकी गहरी संगति प्रेम प्रस्तावों प्रेम गीत संगीत से सराबोर है। सिनेमा शुद्ध रूप से व्यवसाय है और बाज़ार के बढ़ती साख और बाज़ार से उसके बढ़ते संदेश ने पूँजी जो उसकी व्यावसायिक बुनियादी शर्त है उसने ओ टी टी प्लैटफ़ॉर्म के आ जाने से उसकी लोकप्रियता और साख को बढ़ाया ही है। प्रस्तावित शोध आलेख मे 1960 से लेकर आज तक ओ टी टी प्लेटफ़ॉर्म के आ और छा जाने तक हिंदी सिनेमा में प्रेम को जीती हुई प्रेम से सराबोर पगी हुई स्त्रियों को और उनके अंतरंग परिवेश को समझने की कोशिश की है मैनें। इस शोध आलेख में मैनें प्रेम के सात रंगों और प्रेम संगीत के ज़रिये सिनेमा में बदलती प्रेम की छवि प्रेम के सरोकार पर भी जाँच पड़ताल की कोशिश की है। कोशिश भर है .... क्योंकि सिनेमा का भी जीवन के राग रंग की तरह ही कोई ओर छोर नहीं मिलता।

रात भर सर्द हवा चलती रही...
रात भर बुझते हुए रिश्ते को तापा हमने

प्रेम को हमेशा से भावना से ऊपर संभावना के तौर पर देखती रही हूँ। कब कहाँ किसका होकर रह जाए, कह नहीं सकते। ज़ाहिर होकर भी कहाँ ज़ाहिर हो पाता है प्रेम। हाजिर होकर भी ग़ैर हाजिर ही रहता है। इस अजब-गजब शै को मैं मुक्तिबोध की इन पंक्तियों से समझती हूँ–"फिर वही यात्रा सुदूर की, फिर वही खोज भरपूर की। कभी-कभी यह हस्तक्षेप से अधिक स्पंदन है। जो करंट की तरह रगों में दौड़ता है इसे कहीं पहुँचने की हड़बड़ी नहीं।"

इन शोख़ियों में क्या है
जो लुत्फ़ उन दिनों था
आते थे पेश जब तुम कुछ सादगी से पहले
दुनिया की नज़र कुछ हो मेरा ख़याल ये है
कुछ होश कम था मुझमें दीवानगी से पहले

इसे कुछ खोना या पाना नहीं। इसकी प्रक्रिया में ही सबसे बड़ा सुख है। क्योंकि प्रेम साधन नहीं साधना है। जीवन जगत में भी और हिन्दी सिनेमा में भी, प्रेम को देखने परखने समझने व भोगने की अपनी-अपनी पीड़ाएं हैं। ये पीड़ाएँ किसी के लिए चाहत होती हैं तो किसी के पास राहत बन जाती है प्रेम में जो पगा है वह न ग़लत न सही।

सुनते हैं इश्क़ नाम के गुज़रे हैं इक बुज़ुर्ग
हम लोग भी फ़क़ीर इसी सिलसिले के हैं

इसमें अच्छा सच्चा झूठा कुछ नहीं होता। इसमें पगे लोग ही बता सकते हैं कि इसके साथ रहा जा सकता है बसा जा सकता है और मृत्यु के बाद भी बचा रहा

जा सकता है। कम से कम मैंने तो इसे बिना घटाए-बढ़ाए इसी तरह महसूस किया।

माना कि दुनिया बड़ी तेज़ी से बदल रही है। सब कुछ त्वरा में है और बड़ी जल्दी-जल्दी घट रहा है। इस हड़बड़ी के दौर में प्रेम चूकने और चुकने लगता है। एक साथ प्रेम के पीले हल्दी वाले हाथ मेहंदी वाले हाथ, आल्ता रंगे हाथ कुछ-कुछ घुंघले और पीले पड़ने लगे हैं।

सिमट सका न कभी ज़िंदगी का फैलाव
कहीं भी ख़त्म ग़मे आशिक़ी नहीं होता
निकल आती है कोई न कोई गुंजाइश
किसी का प्यार कभी आखिरी नहीं होता

इन परिस्थितियों में प्रेम में पगी स्त्रियों की ज़िम्मेदारी चौगुनी हो जाती है फिर चाहे वह हिन्दी सिनेमा की भूमिका में हों। ये वही स्त्रियाँ हैं जो यादें संजोती हैं, मीठे कड़वे कसैले और तीखे अनुभव बटोरती हैं। और ये वही हैं जो दूसरों की पीड़ाओं में छाती कूट-कूट कर दहाड़े मार रोती हैं। वरना कौन रोता है किसी और की ख़ातिर, सबको अपनी ही किसी बात पर रोना आया।

रोने से और इश्क़ में बेबाक हो गए
धोए गए हम इतने कि बस पाक हो गए

प्रेम कुछ-कुछ अंधे कुएँ सा होता है। जिसमें झांकता तो हर कोई है पर उसकी गहराई की थाह बहुत कम को नसीब हुई। असहमतियों, असंतुष्टि और कभी-कभी तो अनमनेपन से उपजता है प्रेम। इसी मैंने एक अकेली, चुपचाप अपने में रहने वाली स्त्री की बड़बड़ाहट में पाया तो कभी अंधेरे के ख़िलाफ़ रौशनी बनती ख़ुद मशाल बनती प्रेम में पगी स्त्रियों में पाया। यह सब जानकर इतना जान लीजिए कि अगर उलझाव, बनावट और हिचक है तो वह और कुछ भी होगा, ख़ालिस प्रेम नहीं।

जब से तुम्हारे नाम की मिसरी होंठ से लगाई है
मीठा सा गम मीठी सी तन्हाई है।

असल ज़िंदगी से विपरीत सिनेमा में प्रेम में पगी स्त्री कभी खुश हो लेती है, कभी ख़ुशफ़हमी पाल लेती है, कभी झूठे सच्चे वायदों पर मर मिट जाती है। आदतन कर दिए तुमने वायदे, आदतन हमने एतबार किया। मेरा तो मानना है कि हर सिनेमा में कहानी प्रेम के इर्द-गिर्द ही घूमती है। पर असल ज़िंदगी में सिंड्रेला सिंड्रोम हमें कसकता है। हम सब सपनों के आदि हैं और सपने विजुअली चैलेंज स्त्रियाँ भी देखती हैं। पर सिनेमा में इनके सपनों की ज़मानत मिल जाती है। मैं कुछ सिलसिलेवार फ़िल्मों का उदाहरण देते हुए अपने तर्क को पुष्ट करती चलूँगी।

आंसू तमाम शहर की आंखों में हैं मगर,
रहबर बता रहा है के सब ठीक-ठाक है।

1960 में आई फ़िल्म मुग़ल-ए-आज़म। यह प्रेम कहानी सलीम और अनारकली की है। पर जैसा कि हम सब जानते हैं सलीम को तो किसी से भी प्रेम हो सकता था पर मुगल-ए-आज़म के पुत्र सलीम से प्रेम करने की बग़ावत अनारकली करती है। ये बग़ावत भी प्रेम है, जिसके चलते पूरी फ़िल्म में मधुबाला दरबार की नर्तकी होकर भी सम्राट पुत्र के दबदबे को सहकर भी युद्ध व भीतरी रंजिशों को पीकर भी अपने जुनून को ज़िंदा रखती है। और भरी सभा में अपनी बग़ावत को जीती है।

पर्दा नहीं जब कोई ख़ुदा से
बंदों से पर्दा करना क्या,
प्यार किया तो डरना क्या ???

जरा देखो तो ये दरवाजे पर दस्तक किसने दी है
अगर 'इश्क' हो तो कहना,
अब दिल यहाँ नही रहता

1966 में आई तीसरी क़सम, जिसका हर गाना प्रेम में पगी स्त्रियों का मिसाल बन गया। गाना क्या है, लोक कथा है लोकगीत है। प्रेम में क्रांति को जीती हुई स्त्रियाँ इसे गाती हैं। हालाँकि फ़िल्म में इसे नायक हीरामन गाता है। दरअसल हीरे जैसे मन वाला हीरामन प्रेम की पगी स्त्रियों के पीर को और प्रीत को, तड़प और ममता के भाव को, और भाव में डूबे अभाव को जितनी अच्छी तरह समझता है, उसे कौन समझेगा। तीसरी क़सम में स्त्री और पुरूष समान नाम धर्मी है। हीरा। एक का मन हीरे जैसा है जो लोक लाज दुनिया समाज के असमंजस में रहता है। अस करूँ मन की जस करूँ मन। वह फ़िल्म का नायक है। एक हीराबाई है जो पेशेवर अदाकारा नर्तकी, न भीरु है न लोक की परवाह करती है न समाज के बंदिशों में आती है। उसे हीरामन का गवँई अल्हड़ मासूम बुच्च देहाती मन भा जाता है।

सिमट सका न कभी ज़िंदगी का फैलाव
कहीं भी ख़त्म ग़मे आशिक़ी नहीं होता
निकल आती है कोई न कोई गुंजाइश
किसी का प्यार कभी आखिरी नहीं होता

उसके प्रेम का स्वरूप फ़िल्म के तमाम किरदारों से कहीं ऊपर उठ जाता है क्योंकि वह ऐसी स्त्री है जो प्रेम को स्वीकारना, प्रस्तावित करना, अधिकार से लड़ना, निजी एकांतिक क्षणों को चीन्हनना जानती है। महुआ घटवारिन की पीड़ा समझने वाला हीरामन दो गीत गाता है जिसे प्रेम में पगी हर स्त्री दोहराती है।

दुनिया बनाने वाले क्या तेरे मन में समाई,
काहे को दुनिया में बनाई
तू भी तो तड़पा होगा मन को बनाकर,
तूफ़ाँ ये प्यार का मन में छुपाकर,
आंसू भी छलके होंगे पलकों से तेरी,
बोल क्या सूझी तूझको काहे को प्रीत जगाई।3

स्त्री संवेदना से लबालब इन शिकवों और शिकायतों में विधाता टार्गेट है। जिसने मन को बनाया यानी हीरामन, जिसने तूफ़ान जगाया, हीराबाई में। जिसने प्रीत जगाई दोनों को रिझाया, दोनों को तड़पाया। ये उलाहना प्रीत की रीत पर है। क्योंकि मिलना बिछड़ना महज़ संयोग भर नहीं। प्रेम न होता तो तीसरी क़सम भी न होती। न महुआ घटवारिन होती न हीरामन हीराबाई होते। प्रेम का मौन बार-बार चीखता है माँगना क्या और किससे। बताना कब-कब और कहाँ। इस बैलगाड़ी की यात्रा सतत गहरी गंभीर प्रेम की पीर यात्रा है। जिसमें दोनों ओर प्रेम पलता है। यह अंत: यात्रा गंध से रूप, रूप से मान, मान से चाह और चाह से स्पर्श की ओर बढ़ती जाती है। चंपा के फूल की तरह मनोहारी, महमही हल्का कर देने वाली यात्रा हीरामन और हीराबाई में अथाह जिज्ञासा, कौतूहल और सम्मोहन भर देते हैं। इधर हमारा हीरामन भरपूर परिवार में इतने बड़े गाँव जवार में अकेला है। उधर उसकी हीराबाई अपने कला प्रेमियों, सौंदर्य पुजारियों और प्रेम प्रशंसकों की आह और वाह में भी अकेली है। उसकी पीर फूट पड़ती है और कहती है–पूरा ज़माना, पर जिसका पूरा ज़माना होता है, उसका कोई नहीं होता। और यह पीड़ा किसी सोच संकोच से नहीं बड़े मान मनुहार से हीरामन में उतर जाती है। और वह बार-बार कहने लगता है–जा रे ज़माना। यानी उस ज़माने को धिक्कारता है जो रस प्रेम तो है पर साथ ही साथ स्त्री के स्पर्श और देह का प्रेमी भी है। वह स्त्री की गरिमा उसके एकांत और उसकी निजता अस्मिता को पहचान देने से हिचकता है। ऐसा ज़माना भांड में जाए। उसी ज़माने को धिक्कारते हुए हीरामन गाता है–-

सजनवा बैरी हो गए हमार
चिठ्ठिया हो तो हर कोई बाँचे
भाग न बांचे कोई
करमवा बैरी हो गए हमार 4

यह सूनी सेज और सूनी गोद दोनों की है। और देखिए दोनों के नाम एक, दोनों का मान एक, दोनों के भाव एक और दोनों का अभाव भी वही एक। और प्रेम

जादू सा काम कर जाता है। पलकों की चीक डार के पिय को लिया रिझाए, जैसी एकनिष्ठता हीरामन में है और ना मैं देखूँ और को ना तोहे देखन देऊ, ये पारस्परिकता दोनों की है। आप देखिए तो कितना भोला है हीरामन कि गाड़ी पर पर्देदारी करके दुनिया बाज़ार की नज़र से छिपाता बचाता गाड़ी हाँक रहा है एक बाज़ार की औरत को। आस पास आवाजाही करने वाले जब पूछते हैं तो हीरामन का अवचेतन मन भीतर के प्रेम को ज़ाहिर कर देता है—बिदागी की सवारी है जी। यानी ससुराल जाती स्त्री। लाली-लाली डोलियाँ में लाली रे दुल्हनियाँ। उधर हीरामन के मन में उतरने के लिए तिगछिया घाट पर हीराबाई नहीं नहाती। क्योंकि यहाँ कुँवारी लड़कियाँ नहीं नहातीं। अब आप देखिए महुआ घटवारिन के बहाने दुनिया भर की स्त्रियों की उलाहना है।

प्रीत जगाके तूने जीना सिखाया,
जीवन के पथ पर मी मिलाए,
मीत मिलाकर तूने सपने जगाए
सपने जगाकर तूने काहे को दे दी जुदाई 5

विधाता को चैलेंज है, काहे को दुनिया बनाई। प्रेम में पजेसिवनेस प्रेम को गहराता है। मींच को नौटंकी में रंडी कहने पर वहाँ के लोगों पर चंडी बन टूट पड़ता है हीरामन। अपने से पैसे न लेने का गाढ़ा अपनत्व ढोता हीरामन अपनी लदनी की कमाई थैली मीता को सौंप देता है। और टेसन विदाई समय पारिश्रमिक लेने से इनकार कर देता है। क्योंकि मारे गए गुलफाम-अजी मारे गए गुलफाम।

हमारी प्यास का सबसे अलग अंदाज हैं राशिद
कभी दरिया को ठुकराते हैं , कभी शबनम भी पीते हैं

एक फ़िल्म 1975 में आई मिली। जिसने अमानुषिक ठोस पथराई हसरतों में घुसपैठ कर दिया। जो मासूम है पर गंभीर रूप से बीमार और उसी मासूमियत की और खिंचा शेखर मरती हुई मिली में जीने के बहाने ढूँढने लगा। प्रेम वही

परवाह है कि एक मरती हुई स्त्री किसी में जीवन फूंक सकती है। और इठलाकर गाती है–

मैंने कहा फूलों से हँसो तो
वो खिलखिलाकर हँस दिए,
और ये कहा भाई रे भाई
जीवन है हँसने के लिए 6

1997 में आई छोटी सी बात। जिसमें भोला-भाला अरूण अमोल पालेकर संशय और दुविधा में डूबा हुआ बेवक़ूफ़ी की हद तक ग़ैर दुनियादार है। उससे प्रभा को प्रेम हो जाता है। प्रभा यानी विद्या सिन्हा। उसके सीधे-सादे व्यक्तित्व पर रीझ जाती है। क्योंकि प्रेम सीखाता है कोई बात छोटी-बड़ी नहीं होती। नज़रिया छोटा बड़ा होता है।

दर्द हल्का है साँस भारी है,जिए जाने की रस्म जारी है।
आप के बाद हर घड़ी हम ने,आप के साथ ही गुज़ारी है

और फिर जैसा कि केवल सिनेमा में ही होता है लव गुरु अशोक कुमार के आ जाने पर अरुण को लेकर प्रभा का नज़रिया सबका नज़रिया बन जाता है।

लाजिम है मगर दुःख है क़यामत का फ़राज़,
जालिम अब के भी न रोयेगा तू तो मर जायेगा...

1982 में फारुख़ शेख़ और दीप्ति नवल की फ़िल्म साथ-साथ आई।

ये तेरा घर ये मेरा घर
किसी को देखना हो ग़र
तो पहले आके माँग ले
तेरी नज़र मेरी नज़र 7

क्योंकि ये नज़र ही तो समाज के पास नहीं है। प्रेम तो भोला भाला होता है। समाज सयाना, चौकन्ना चौकस। जब भी आँखें चार होती हैं समाज उनमें ऊँच नीच भेदभाव जाति और वर्ग लेकर कूद पड़ता है। दो प्रेमियों में दरार डालता है और असल ज़िंदगी की तरह गीता और अविनाश की कहानी में से प्रेम गीत रीतने लगता है और दोनों विनाश की ओर बढ़ने लगते हैं। और मजबूर होकर गा पड़ते हैं—-

क्यों ज़िंदगी की राह में मजबूर हो गए
इतने हुए क़रीब की हम दूर हो गए। 8

एक सुकून सा मिलता है तुझे सोचने से भी,
फिर कैसे कह दूँ मेरा इश्क़ बेवजह सा है ।।

अपनी बात के आख़िरी दौर में हूँ। ये उन दिनों की बात है जब मैं प्रेम में आकंठ डूबी थी। 1995 में बॉम्बे फ़िल्म आई। जिसमें जात पात धर्म जमात प्रेम के आड़े नहीं आ पाता। प्रेम को उकसाता है। लक्षित करता है। इंसानियत व प्रेम की सीख देने वाली यह फ़िल्म केवल दो प्रेमी आत्माओं का मिलन नहीं दिखाती, बल्कि समूचे समाज को सहयोग सद्भाव सौहार्द सिखाती है। आप ही देखें। दंगों में जब हर तरफ़ हिंसा, क्रूर अमानवीय तांडव हो रहा हो, ऐसे में प्रेमी युगल शेखर और शायला बानो

एक हो गए हम और तुम
तो उड़ गई नींदे रे
और खनकी पायल मस्ती में
तो कंगन खनके रे 9

हम्मा-हम्मा की धुन पर अलमस्ती में नाचते ये युगल मज़हबी मठाधीशों को मुँह चिढ़ाते हैं। धर्म की जकड़बंदी की खिल्ली उड़ाते हैं। और अपने बच्चों को ह से

हिन्दू और म से मुसलमान बनाते हैं। यही हम्मा-हम्मा की धुन सिनेमा से उतरकर असली ज़िंदगी में प्रेम करती स्त्रियों में घुलमिल जाती है।

एक बार फिर इश्क़ करेंगे हम,
अभी सिर्फ भरोसा उठा है जनाजा नहीं।।

अपने शब्दों को विराम दूँगी इस आख़िरी फ़िल्म को कोट करते हुए जो 2013 में आई। एक अधेड़ उम्र के विधुर को एक अनदेखी अनजानी स्त्री से प्रेम हो जाता है। लंचबॉक्स में रखी पर्चियाँ उनका आदान-प्रदान है। और फ़िल्म कहती है—कि प्रेम की इस गत में सच्चाई है। कि पुरूष के दिल का रास्ता उसके पेट से गुजरता है। निमरत कौर का भेजा हुआ लंच उसके पति तक नहीं पहुँचता, क्योंकि दोनों के दिल की राहें जुदा हो चुकी हैं। इरफ़ान खान से कनेक्शन जुड़ जाता है। कैसे बिना देखे, बिना जाने एक दूसरे की दिनचर्या का ज़रूरी हिस्सा बन जाते हैं। यह भी प्रेम में पगी हुई स्त्री का एक रूप है जो पति के प्रेम से वंचित है। और एक अनजान पुरूष के लिए स्थान परिवर्तन तक का साहस सोच लेती है।

हम तो समझे थे कि हम भूल गए हैं उनको,
क्या हुआ आज ये किस बात पे रोना आया?

सच ही है प्रेम में क्रांति स्त्रियाँ ही करती रही हैं और करती रहेंगी।

मन केसर-केसर महके रेशम-रेशम लागे रे
दिल चंपई-चंपई बांधे सिंदूरी से धागे रे
दोनो नैनों में पिया बसे सारा-सारा
इन्हीं नैनों में सारा मिले प्यार आँचल में
हो पुरवा रूनझुन तारे आँगन में आँगन में आँगन में। 10

नेटफ्लिक्स Netflix ने इस मीठी सी प्रेम कहानी को बिल्कुल साधारण किंतु प्रभावशाली तरीके से पर्दे पर उतारा है, मीनाक्षी, जो आज के समय की होकर भी

संयुक्त परिवार में सामंजस्य बिठाने का प्रयास कर रही है क्यूंकि विवाह के बाद ही शर्मीले स्वभाव के सुंदरेश्वर को नौकरी के लिये बैंगलोर जाना पड़ता है, जहाँ वह अपने विवाहित जीवन के विषय में किसी से बात नहीं कर सकता। मीनाक्षी सुंदरेश्वर फिल्म के प्रचार में सबसे बड़ी भूमिका निभाई थी, इस फिल्म के मीठे और सीधे शब्दों से भरे गीत- मन केसर केसर ने। इस एक गीत के दवारा नेटफ्लिक्स ने अपनी फिल्म को बड़ी सादगी से, दक्षिण भारतीय संस्कृति को जोड़कर और सुंदरता से दर्शकों के हृदय में पहुंचा दिया है। मीनाक्षी सुंदरेश्वर में सान्या मेहरोत्रा और अभिमन्यु नव विवाहितों के किरदार में हैं। सान्या मदुरै की छोटी-सी कम्पनी में काम करती हैं और अभिमन्यु इंजीनियर है। शादी के बाद ही नौकरी के लिए अभिमन्यु को बैंगलोर जाना पड़ता है और इसके बाद दोनों लॉन्ग डिस्टेंस रिलेशनशिप के साइड इफैक्ट्स का शिकार बनते हैं। फ़िल्म में दक्षिण भारतीय किरदारों में सान्या और अभिमन्यु ठीक लग रहे हैं। पति-पत्नी के किरदार में दोनों की कैमिस्ट्री में एक फ्रेशनेस है। यह रोमांटिक ड्रामा फ़िल्म 5 नवम्बर 2021 को नेटफ्लिक्स पर आई और बहुत चर्चित रही। फिल्म में प्रेम का जो अहसास है वो दर्शकों के लिए खास अहम है और वही बार-बार प्रेम की एक अलग परिभाषा लिख रहा होता है। जैसा कि नाम से लगता है मीनाक्षी और सुंदरेश्वर यानी शिव और पार्वती। इन दोनों का प्यार भी वैसा ही है। मीनाक्षी प्रेम में जितना ज्यादा पगती चली जाती है, दर्शकों की भावनाओं उसके साथ उतनी ज्यादा जुड़ती चली जाती है। यह प्रेम ही है जिसके बहाव में सबकुछ बह जाता है और लॉन्ग डिस्टेंस रिलेशनशिप को अटूट बंधन में बांध लेता है। कहते हैं दूरियाँ रिश्तों में दरार पैदा करती हैं लेकिन प्रेम जब पग रहा हो तो फिर ऐसी दूरियों का कोई मायने नहीं रह जाता। मीनाक्षी आज के समय की होकर भी संयुक्त परिवार में सामंजस्य बिठाने का प्रयास कर रही है, क्यूंकि विवाह के बाद ही शर्मीले स्वभाव के सुंदरेश्वर को नौकरी के लिये बैंगलोर जाना पड़ता है, जहाँ वह अपने विवाहित जीवन के विषय में किसी से बात नहीं कर सकता।

इधर मीनाक्षी अपने मन की दुविधा किसी से कह नहीं पा रही और दोनों के बीच दूरी बढ़ने लगती है, लेकिन दोनों के बीच की सच्चे प्रेम से बंधी डोरी इतनी आसानी से कैसे टूटती ? आखिरकार सुंदरेश्वर मीनाक्षी को मना लेता है और

मीनाक्षी को तो केवल सुंदरेश्वर का साथ ही चाहिए था। मीनाक्षी और सुंदरेश्वर का मिलन यहाँ भी हो ही जाता है और फिल्म समाप्त होती है।

सिनेमा में प्रेम में पगी स्त्रियों का जिस तरह से रंग पगता गया उसी तरह से आम ज़िंदगी में उसको देखने का नज़रिया भी परवान चढ़ता गया। जैसा मैंने पहले भी कहा था कि इसमें ओटीटी ने काफी मदद की। कहते हैं प्रेम जितना ज्यादा नज़रों में बसेगा, समाज उतना सुंदर होता जाएगा। कितना होगा यह वक्त बताएगा पर इतना है कि ओटीटी ने उसको विस्तार दिया है।11

OTT ने इसे विस्तार दिया है और प्रेम में पगी स्त्रियों के भावों को घर- घर पहुंचाया है।

<u>बिबलियोग्राफी—संदर्भ शोध आलेख</u>

1. गुलज़ार, फिल्म *खामोशी* (1969)
2. के आसिफ़, फ़िल्म *मुग़ल ए आज़म* (1960)
3. वही.
4. बासू भट्टाचार्य, फ़िल्म *तीसरी क़सम* (1966)
5. वही.
6. ऋषिकेश मुखर्जी, फ़िल्म *मिली* (1975)
7. रमन कुमार, फिल्म *साथ-साथ (*1982)
8. वही.
9. मणिरत्नम, फिल्म *बॉम्बे* (1995)
10. विवेक सोनी, फिल्म *मीनाक्षी सुंदरेश्वर* (2021)
11. https://en.wikipedia.org/wiki/Web_series